क्या और क्यों

कौन हैं ये माओवादी? ये प्रतिबंधित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के सदस्य हैं–उसी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी–लेनिनवादी) के कई वंशजों में से एक, जिसने 1969 के नक्सली उभार का नेतृत्व किया और फ़िर जिसका भारत सरकार ने सफाया कर दिया। माओवादी मानते हैं कि भारतीय समाज में अंतर्निहित संरचनागत असामनता को समाप्त करने के लिए भारतीय राज्य को हिंसक तरीके से उखाड़ फेंकना ही एकमात्र रास्ता है। झारखंड और बिहार में माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर (एमसीसी) तथा आंध्र में पीपुल्स वार ग्रुप (पीडब्लूजी) के अपने पुराने अवतार के रूप में माओवादियों को जबरदस्त जनसमर्थन हासिल था। (2004 में जब कुछ समय के लिए इन पर से प्रतिबंध हटाया गया, तब वारंगल में हुई इनकी रैली में 15 लाख लोग़ों ने हिस्सा लिया था।) लेकिन अंतत: आंध्रप्रदेश में मध्यस्थता के उनके इस अनुभव के दौर का अंत बुरा हुआ। इसने यहां एक ऐसी हिंसक विरासत छोड़ी कि माओवादियों के कुछ प्रबल समर्थक भी उनके विरोधी बन गये। आंध्रप्रदेश पुलिस और माओवादियों, दोनों ओर से हत्याओं और बदले की हत्याओं के लंबे दौर में पीडब्लूजी का खात्मा हो गया। जो बचने में कामयाब रहे, वे आंध्र से भाग कर पड़ोसी राज्य छत्तीसगढ़ में चले आये। यहां उन्होंने घने जंगलों में अपने उन साथियों का हाथ थाम लिया, जो पहले ही दशकों से इस इलाके में सक्रिय थे।

- अरुंधती राय

जब भारत नाम का देश या उड़ीसा नाम का राज्य नहीं हुआ करता था, तब से डोंगरिया कोड आदिवासी दक्षिणी उड़ीसा की कम ऊंचाई वाली पठारी पहाड़ियों में रहते आ रहे हैं। ये पहाड़ियां कोंडों का ख्याल रखती थीं। कोंड भी इन पहाड़ियों का ध्यान रखते थे और इनको साक्षात देवता मान कर पूजते थे। आज इन पहाड़ियों को बेचा जा रहा है, क्योंकि इनमें बॉक्साइट है। कोंड आदिवासियों के लिए यह ऐसे ही है, जैसे कि उनके भगवान की बोली लगा दी गई हो। वे पूछते हैं, उस भगवान की कितनी कीमत लगती जो भगवान राम, अल्लाह या ईसा मसीह होता।

संभव है कोंड कम से कम इस बात के लिए तो आभारी होंगे ही कि उनके भगवान, ब्रह्मांड के नियमों के देव, नियम राजा के घर नियमगिरी पहाड़ी को ऐसी कंपनी को भेजा है जो वेदांत जैसे नाम वाली है। यह दुनिया के सबसे बड़े खनन निगमों में से एक है। इस अमेरिकी निगम का कर्ता-धर्ता एक भारतीय मूल का अरबपति अनिल अग्रवाल है। वह लंदन के जिस घर में रहता है, वह कभी ईरान के शाह का हुआ करता था। उड़ीसा में मौजूद तमाम बहुराष्ट्रीय निगमों में वेदांत सिर्फ़ एक है।

यदि इन पहाड़ियों को नष्ट कर दिया गया तो इन्हें ढंकने वाले जंगल भी नष्ट हो जायेंगे। यही हाल उन नदियों और सोतों का होगा जो इनसे निकलते हैं और नीचे मैदानों को सींचते हैं। इनके साथ डोंगरिया कोंड भी नष्ट हो जायेंगे और साथ ही वे सैंकड़ों-हज़ारों आदिवासी जो मध्य भारत के जंगलों में रहते हैं। उनकी मातृभूमि पर भी ऐसा हमला हो रहा है।

हमारे भीड़भाड़ वाले धुंधुआते शहरों में कुछ लोग़ कहते मिल जाते हैं, 'तो क्या हुआ? किसी को तो प्रगति की कीमत चुकानी ही होगी।' कुछ तो यहां तक कहते हैं, 'इस तथ्य से बचा नहीं जा सकता कि यही वे लोग़ हैं जिनका वक्त आ चुका है। आप किसी भी विकसित देश को देखें, यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया - सभी का एक अतीत है' निश्चित तौर पर है। तो फ़िर 'हमारा' क्यों न हो?

सरकार ने इसी सोच पर काम करते हुए ऑपरेशन ग्रीन हंट की घोषणा कर डाली है - एक युद्ध, जो मध्य भारत के जंगलों में केंद्रित 'माओवादी' विद्रोहियों के खिलाफ़ चलाया जायेगा। जाहिर है, इस देश में अकेले माओवादी ही विद्रोह नहीं कर रहे हैं। समूचे देश में संघर्षों की ऐसी तमाम धारायें हैं जिनमें हर किस्म के लोग़ लगे हुए हैं - भूमिहीन, दलित, श्रमिक, किसान और बुनकर। ये सभी अन्याय के चक्र के खिलाफ़ खड़े हैं। इसमें ऐसी नीतियां भी शामिल हैं जो लोग़ों की ज़मीनों और संसाधनों पर कॉरपोरेट कब्ज़े को मंजूरी देती हैं। पर सरकार ने इन सभी में से अकेले माओवादियों की सबसे बड़े खतरे के रूप में शिनाख्त की है।

दो साल पहले जब चीजें आज जितनी खराब नहीं थीं, प्रधानमंत्री ने माओवादियों को 'देश की आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा' बताया था। संभवत: यह उनकी कही सबसे बहुचर्चित बात है जिसे बार-बार दुहराया गया है। न जाने किन कारणों से राज्यों के मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में उन्होंने 6 जनवरी, 2009 को कहा कि माओवादियों की 'क्षमतायें मामूली' हैं तो शायद यह बात उतनी उत्तेजक न होने के कारण अपील नहीं कर सकी। 18 जून, 2009 को उन्होंने अपनी सरकार की वास्तविक चिंता संसद में रखी, जब उन्होंने कहा- 'यदि वामपंथी अतिवाद देश के उन हिस्सों में पनपता रहा जहां खनिज के प्राकृतिक संसाधन मौजूद हैं, तो निवेश का माहौल निश्चित तौर पर प्रभावित होगा।'

कौन हैं ये माओवादी? ये प्रतिबंधित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के सदस्य हैं-उसी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) के कई वंशजों में से एक, जिसने 1969 के नक्सली उभार का नेतृत्व किया और फ़िर जिसका भारत सरकार ने सफाया कर दिया। माओवादी मानते हैं कि भारतीय समाज में अंतर्निहित संरचनागत असामनता को समाप्त करने के लिए भारतीय राज्य को हिंसक तरीके से उखाड़ फेंकना ही एकमात्र रास्ता है। झारखंड और बिहार में माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर (एमसीसी) तथा आंध्र में पीपुल्स वार ग्रुप (पीडब्लूजी) के अपने पुराने अवतार के रूप में माओवादियों को जबरदस्त जनसमर्थन हासिल था। (2004 में जब कुछ समय के लिए इन पर से प्रतिबंध हटाया गया, तब वारंगल में हुई इनकी रैली में 15 लाख लोग़ों ने हिस्सा लिया था।) लेकिन अंतत: आंध्रप्रदेश में मध्यस्थता के उनके इस अनुभव के दौर का अंत बुरा हुआ। इसने यहां एक ऐसी हिंसक विरासत छोड़ी कि माओवादियों के कुछ प्रबल समर्थक भी उनके विरोधी बन गये। आंध्रप्रदेश पुलिस और माओवादियों, दोनों ओर से हत्याओं और बदले की हत्याओं के लंबे दौर में पीडब्लूजी का खात्मा हो गया। जो बचने में कामयाब रहे, वे आंध्र से भाग कर पड़ोसी राज्य छत्तीसगढ़ में चले आये। यहां उन्होंने घने जंगलों में अपने उन साथियों का हाथ थाम लिया, जो पहले ही दशकों से इस इलाके में सक्रिय थे।

ऐसे कम ही 'बाहरी' लोग़ हैं जिन्हें जंगलों से चलाये जा रहे माओवादी आंदोलन की वास्तविक प्रकृति के बारे में कुछ पता हो। फ़िलहाल, मध्य भारत में माओवादियों की जो गुरिल्ला सेना है, उसमें तकरीबन सभी ग़रीब आदिवासी हैं। ये लंबे समय से भुखमरी के ऐसे हालात में जीते आ रहे हैं जिनकी तुलना सब-सहारन अफ्रीका के सुखाड़ से ही की जा सकती है। ये ऐसे लोग़ हैं जिनकी पहुंच तथाकथित आजादी के 60 साल बाद भी शिक्षा, स्वास्थ्य और कानूनी सेवाओं तक नहीं बन सकी है। सदियों से इनका बर्बर शोषण होता आ रहा है। छोटे-मोटे कारोबारी और सूदखोर इन्हें लगातार छलते रहे हैं। पुलिस और वन विभाग के कर्मचारी इनकी औरतों से बलात्कार करना अपना अधिकार समझते रहे हैं। ऐसे में इन्हें जो थोड़ा-बहुत आत्मसम्मान वापस हासिल हो सका है, उसका श्रेय माओवादी काडरों को जाता है जो इनके साथ दशकों से रहते और काम करते आये हैं, जो इनकी ओर से लड़ते आये हैं।

यदि आदिवासियों ने आज हथियार उठा लिए हैं तो इसलिए क्योंकि एक ऐसी सरकार जिसने इन्हें हिंसा और उपेक्षा के अलावा और कुछ नहीं दिया, अब इनकी आखिरी अमानत-इनकी ज़मीन-को छीन लेना चाहती है। जाहिर है, जब सरकार कहती है कि वह उनके क्षेत्र का 'विकास' करना चाह रही है तो वे इस बात पर विश्वास नहीं करते। वे नहीं मानते कि दांतेवाड़ा में राष्ट्रीय खनिज विकास निगम द्वारा बनवाई जा रही हवाई पट्टी जितनी चौड़ी सड़क उनके बच्चों के स्कूल जाने के लिए है। उन्हें लगता है कि अगर उन्होंने अपनी ज़मीन की लड़ाई नहीं लड़ी तो वे खत्म हो जायेंगे। और इसीलिए उन्होंने हथियार उठा लिये हैं।

भले ही माओवादी आंदोलन के सिद्धांतकार अंतत: भारतीय राज्य को उखाड़ फेंकने की लड़ाई लड़ रहे हों, लेकिन फ़िलहाल वे भी जानते हैं कि उनकी बेहाल कुपोषित सेना - जिसके अधिकतर सिपाहियों ने आज तक कोई बस, ट्रेन या छोटा शहर तक नहीं देखा है - सिर्फ़ अपने वजूद की लड़ाई लड़ रही है।

योजना आयोग द्वारा गठित एक विशेषज्ञ कमेटी ने 2008 में एक रिपोर्ट पेश की थी जिसका नाम है 'चरमपंथ प्रभावित इलाकों में विकास की चुनौतियां।' उसमें कहा गया था, 'नक्सली आंदोलन को एक राजनीतिक आंदोलन के रूप में देखा जाना होगा जिसका भूमिहीनों, गरीब किसानों और आदिवासियों के बीच मजबूत आधार है। इसके अनुभवों और फैलाव को उसमें शामिल लोग़ों के अनुभवों और सामाजिक स्थितियों के संदर्भ में देखना होगा। इन स्थितियों का एक लक्षण सरकारी नीतियों की करनी और कथनी के बीच मौजूद बड़ा फासला है। भले ही इसकी विचारधारा का घोषित उद्देश्य बल प्रयोग से सत्ता पर कब्ज़ा करना हो, लेकिन जिस तरह से यह दैनंदिन तौर पर अभिव्यक्त होती है, उस लिहाज से इसे बुनियादी तौर पर सामाजिक न्याय, समता, संरक्षण, सुरक्षा और स्थानीय विकास के लिए संघर्ष के रूप में देखा जाना होगा।' यह 'आंतरिक सुरक्षा के इकलौते सबसे बड़े खतरे' के मुहावरे से बिल्कुल उलट बात है। चूंकि माओवादी विद्रोह हफ़्ते की चटकारेदार ख़बर है, हर चतुर-सुजान से लेकर देश में सर्वाधिक बिकने वाले अख़बार के जनूनी संपादक तक, अचानक यह मानने को तैयार हो गये कि इस समस्या की जड़ में दशकों से चला आ रहा अन्याय ही है। लेकिन समस्या को संबोधित करने की बजाय जिसका सीधा अर्थ होगा इक्कीसवीं सदी की इस सब से बड़ी लूट पर रोक लगाना-वे इस बहस को माओवादी 'आतंकवाद' के खिलाफ़ एक सच्चरित्र किस्म के हल्ले से बिल्कुल दूसरी ही दिशा में मोड़ने की कोशिश लगे हैं। लेकिन ये लोग़ दरअसल खुद से ही बातें करने में लगे हैं।

जिन लोग़ों ने हथियार उठा रखे हैं, वे अपना समय टीवी देखने में या अख़बार पढ़ने में या उस दिन के मॉरल साइंस के सवाल पर एसएमएस पोल करने कि हिंसा बुरी है या अच्छी?...अपना उत्तर एसएमएस करें...पर नहीं बिताते। वे मोर्चे पर हैं। वे लड़ रहे हैं। उनका विश्वास है कि उन्हें अपना घर और ज़मीन की रक्षा करने का अधिकार है। वे मानते हैं कि उन्हें न्याय मिलना चाहिए।

सरकार ने अपने खाये-पिये नागरिकों को इन खतरनाक लोग़ों से बचाने के लिए युद्ध की घोषणा कर दी है। एक ऐसा युद्ध जिसके बारे में बताया जा रहा है कि इसे जीतने में तीन से पांच वर्ष लग जायेंगे। क्या यह अजीब नहीं है मुंबई के 26/11 के आक्रमण के बावजूद सरकार पाकिस्तान से बात करने को तैयार थी? वह चीन से भी बातचीत को तैयार है। लेकिन जब ग़रीबों के खिलाफ़ युद्ध छेड़ने की बात आती है तो यह कठोर रुख अपना लेती है। क्या यह काफ़ी नहीं है कि ग्रेहाऊंड, कोबरा और स्कॉर्पियन जैसे पाशविक नामों वाली विशेष पुलिस हत्या करने का लाइसेंस लिए जंगलों में गश्त लगा रही है। क्या यह काफ़ी नहीं है कि सुदूर गांवों में केंद्रीय रिजर्व पुलिस, सीमा सुरक्षा बल और बदनाम नगा बटालियन पहले ही नृशंस कहर बरपा चुकी है और नृशंस अत्याचार कर चुकी है। यह काफ़ी नहीं है कि सरकार उस 'जन मिलिशिया' सलवा जुडूम को चला रही है, जिसने दांतेवाड़ा के जंगलों में मारते-काटते, बलात्कार करते और आग लगाते हुए तीन लाख लोग़ों को बेघर कर जो अपनी जान बचाने के लिए भागे हुए हैं, अपनी राह बनाई है। सरकार अब यहां भारत-तिब्बत सीमा पुलिस और दसियों हज़ार अर्द्धसैन्य बलों की टुकड़ियों को तैनात करने जा रही है। बिलासपुर में ब्रिगेड मुख्यालय (जिससे नौ गांव विस्थापित होंगे)। और राजनांदगांव में एयर बेस बनाया जाना है (इससे सात गांव विस्थापित होंगे)। जाहिर है, ये फैसले पहले ही लिये जा चुके हैं। सर्वेक्षण किये जा चुके हैं, जगहें चुनी जा चुकी हैं। यह दिलचस्प है। काफ़ी समय से युद्ध की तैयारी थी। और अब भारतीय वायु सेना के हेलिकॉप्टरों को 'आत्मरक्षा' में गोली चलाने का अधिकार दे दिया गया है, वही अधिकार, जिससे अपने निर्धनतम नागरिकों को सरकार वंचित रखना चाहती है।

आखिर गोली किस पर चलाई जायेगी? सुरक्षा बल एक माओवादी और जंगल में डर से बदहवास भागते आदमी के बीच फर्क कैसे करेंगे? क्या सदियों से तीर-कमान लिये चलने वाले आदिवासियों को भी अब माओवादी माना जायेगा? क्या माओवादियों के निरस्त्र समर्थक भी अब जायज निशाना होंगे? दांतेवाड़ा में पुलिस अधीक्षक ने 19 माओवादियों की तस्वीरें दिखाई थीं जिन्हें उनके 'लड़कों' ने मार गिराया था। मैंने पूछा कि आखिर मैं कैसे मान लूं कि ये माओवादी हैं? उन्होंने कहा, 'ये देखिये मैडम, इनके पास मलेरिया की दवाइयां हैं, डिटॉल की शीशियां हैं, ये सारी चीजें बाहर से आई हैं।'

ऑपरेशन ग्रीन हंट आखिर किस तरह का युद्ध होगा? क्या हम कभी जान पायेंगे? जंगलों से कम ही ख़बरें बाहर आ पाती हैं। पश्चिम बंगाल में लालगढ़ की घेराबंदी है। जो भीतर जाने की कोशिश करते हैं, उनको पीटा जाता है और गिरफ़्तार कर लिया जाता है। और हां, माओवादी करार दिया जाता है। दांतेवाड़ा में हिमांशु कुमार का गांधी आश्रम, वनवासी चेतना आश्रम कुछ ही घंटों में जमींदोज कर दिया गया। युद्धक्षेत्र शुरू होने से पहले का वह आखिरी शांति स्थल था। एक ऐसी जगह जहां अपने काम के दौरान पत्रकार, कार्यकर्ता, शोधकर्ता और फैक्ट फाइंडिंग दल वहां रुका करते थे।

इस बीच भारतीय सत्ता ने अपना सबसे कारगर अस्त्र चला दिया है। तकरीबन रातोंरात हमारे इंबेडेड (समर्पित) मीडिया ने 'इस्लामिक आतंकवाद' की फर्जी, अपुष्ट और सनसनीखेज ख़बरों की जगह अब 'लाल आतंकवाद' की ऐसी ही फर्जी और अपुष्ट ख़बरें दिखानी शुरू कर दी है। इस सब घपले के बीच ग्राऊंड ज़ीरो (युद्धक्षेत्र) में चुप्पी की जंजीर को लगातार कसा जा रहा है। बहुत संभव है योजना 'श्रीलंका जैसा हल' निकालने की हो। यह अकारण नहीं है कि हाल ही में श्रीलंका सरकार द्वारा लिट्टे पर हमले के दौरान किये गये युद्ध अपराधों की जांच की संयुक्त राष्ट्रसंघ में यूरोपीय देशों की मांग पर भारत ने अड़ंगा लगा दिया था।

इस दिशा में सबसे पहला काम वह सरकारी प्रचार है जिसनें देश भर में जारी विभिन्न किस्म के प्रतिरोध आंदोलनों को